प्रजातंत्र में अनिर्वाचित संस्थाओं का महत्व

हाल के दिनों में सरकार और रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया के बीच हुए विवाद ने कुछ सैद्धांतिक प्रश्न खड़े किए हैं? कुछ समीक्षकों का मानना है कि सरकार एक निर्वाचित संस्था है, जबकि आर.बी.आई. के साथ ऐसा नहीं है। प्रजातंत्र में निर्वाचित निकाय का ही वर्चस्व रहना चाहिए। आंशिक रूप से इस तर्क को सत्य माना जा सकता है। परन्तु व्यवहार की दृष्टि से यह अत्यंत घातक हो सकता है। विश्व के सभी सफल प्रजातंत्र, जितना निर्वाचित संस्थाओं पर निर्भर रहे हैं, उतना ही अनिर्वाचित संस्थाओं पर रहे हैं।

सर्वोच्च न्यायालय, चुनाव आयोग तथा सेना भारत के ऐसे अर्निाचित संस्थान हैं, जो सर्वोच्च गरिमा को धारण करते हैं। कुछ लोग नियंत्रक व लेखा परीक्षक (कैग) को भी इसी श्रेणी में रखते हैं। इसके उलट चुने हुए अधिकांश नेताओं को जनता मूर्ख और लुटेरा मानती है।

इसका यह मतलब कतई नहीं है कि नेताओं का कोई महत्व नहीं है। लेकिन उनके साथ अस्थायी शक्ति का तथ्य जुड़ा हुआ है। उनका निर्वाचित होना ही केवल उन्हें न्यायालयों, आयोगों और संविधान से श्रेष्ठ नहीं बना सकता है।

लालू यादव ने भ्रष्टाचार के आरोप लगने के बाद भी कई बार चुनाव जीते, और यह कह दिया गया कि 'जनता के दरबार' में उन्हें बरी कर दिया गया है। लेकिन यह सिर्फ शब्दाडंबर है। कोई भी चुनाव, किसी अपराधी के अपराध का फैसला करने वाला नहीं होता। इसका निर्णय केवल वह अनिर्वाचित न्यायिक प्रक्रिया ही कर सकती है, जो किसी मुजरिम को उसके पद और पैसे से नहीं तौलती।

अमेरिकी संविधान के निर्माताओं में से एक जेम्स मेडीसन ने कहा है कि, "निर्वाचित सरकारें आसानी से बहुपक्षीय अत्याचार या निहित शक्तिशाली स्वार्थ के कारण, अत्याचार का साधन बन सकती हैं।" उनको लगता है कि व्यक्तिगत अधिकारों की प्रधानता से ही वास्तविक स्वतंत्रता मिलती है। अस्थायी रूप से निर्वाचित लोगों के द्वारा इसका दमन नहीं होना चाहिए। अतः उन्होंने निर्वाचित सरकारों के ऐसे कार्यों पर शक्तिशाली अनिर्वाचित संस्थाओं द्वारा नियंत्रण बनाए

रखने की बात कही है, जो अल्पावधि में भले ही आकर्षक प्रतीत हों, परन्तु दीर्घावधि में जिनके घातक परिणाम हो सकते हैं।

व्यक्तिगत अधिकारों का अस्तित्व संविधान में प्रतिष्ठापित कानून के समक्ष समानता पर निर्भर करता है। सामूहिक अधिकारों की बात करना महज राजनीति है। अधिकतर राजनीतिक गतिविधियां जो धर्म, जाति, संप्रदाय आदि के नाम पर आरक्षण या सुविधाएं देने की बात करती हैं, वे व्यक्तिगत मौलिक अधिकारों का हनन कर सकती हैं। ऐसी गतिविधियों पर न्यायालय रोक लगा सकता है।

यह स्मरण रहना चाहिए कि संविधान का निर्माण करने वाली सभा भी अनिर्वाचित थी। इससे क्या उसकी वैधता पर आंच आई या निर्वाचित संस्थाओं की तुलना में उसका महत्व कम हो गया? कदापि नहीं। इस सभा को पुनर्निर्वाचित होने की कोई चिन्ता न होने से, उस पर किसी प्रकार का दबाव नहीं था। वे दीर्घकालीन नीतियां बनाने की शक्तियों से लैस थे। अतः वे अल्पकालीन आकर्षण, प्राथमिकता एवं रुझानों से प्रभावित नहीं हुए।

इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि आगामी निर्वाचित सरकारों ने संविधान में अनेक संशोधन करके, संविधान संविधान सभा को चुनौती दी। परन्तु प्रत्येक संशोधन के लिए संसद के दोनों सदनों में दो-तिहाई बहुमत के साथ, राज्यों की सहमति की भी आवश्यकता थी। इससे यह सिद्ध होता है कि संवैधानिक संशोधनों को अनेक स्तरों पर जाँचा-परखा गया। उन्हें वृहद स्तर पर वैधता प्रदान की गई। इसका अर्थ है कि केवल अल्पकालिक राजनीतिक लाभ के लिए उसमें छेड़छाड़ नहीं की गई।

भारत के शीर्ष अनिर्वाचित संस्थान, राजनैतिक नियंत्रण से अलग नहीं हैं। न्यायाधीशों, चुनाव आयुक्त, सेना प्रमुख व कैग के सदस्यों के चयन में सरकार की अहम् भूमिका होती है। इससे ये संस्थाएं निर्वाचित सरकारों के प्रति कुछ हद तक जिम्मेदार होती हैं। कुछ समीक्षकों का मानना है कि भारत के सर्वोच्च न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए वर्णित संवैधानिक प्रावधानों में सरकार की कोई खास भूमिका नहीं बताई गई है। परन्तु उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों पर संसद महाभियोग चला सकती है। इस प्रकार उनकी स्वतंत्रता निरंकुश नहीं है।

कुल-मिलाकर यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक प्रजातंत्र को नियंत्रण और संतुलन की आवश्यकता होती है। निर्वाचित सरकार पर नियंत्रण बनाए रखने के लिए भी देश को कुछ स्वतंत्र, अनिर्वाचित संस्थाओं की आवश्यकता है। दूसरी तरफ, इन स्वतंत्र संस्थानों की जवाबदेही बनाए रखने के लिए भी राजनैतिक नियंत्रण होना चाहिए। संस्थाओं पर नियंत्रण और संतुलन बनाए रखने की शक्ति और वैधता पर वाद-विवाद होना, एक प्रजातंत्र के लिए अपरिहार्य एवं स्वास्थ्यवद्र्धक है। अलग-अलग सिद्धांतों को लेकर टकराव तो होते ही रहेंगे। संविधान एक ऐसा दस्तावेज है, जिसमें समय के साथ परिवर्तन होंगे। प्रत्येक निर्वाचित सरकार को भी अनिर्वाचित स्वतंत्र संस्थाओं के समक्ष बंधन स्वीकार करने ही होंगे।

'द टाइम्स ऑफ इंडिया' में प्रकाशित स्वामीनाथन् अंकलेश्वर अय्यर के लेख पर आधारित। 11 नवम्बर, 2018